क्या कबीर खगोल शास्त्री थे?

पद्म प्रिया

आईनस्टीन ने 1954 में अपने 'आईडियाज एंड ओपिनियस' में लिखा था कि –'' सबसे सुन्दर अनुभूति जो हमें हो सकती है वह है इस विश्व की रहस्यपूर्णता की यह वह है (इस विश्व की) रहस्यपूर्णता की। यह वह मूल भावना है जो असली कला और असली विज्ञान के शिशुकाल से ही उसके साथ है।.....

.....भय मिश्रित रहस्य की अनुभूति ने ही आदिम काल से धर्म को जन्म दिया। एक ऐसी चीज के अस्तित्व का बोध जिसकी बहराईयों में हम नहीं प्रवेश कर पाते, अत्यंत गंभीर बोध और अत्यंत दीप्तिमान सौन्दर्य से हमारा साक्षात्कार जिन तक हमारे मानस की पहुच प्रिमिटव या प्राथमिक रूप में ही हो पाती है–इसी ज्ञान और इसी भाव से ही सव्वी धर्मनिष्ठा की रचना होती है।.....

मैं तो ईश्वर को जीवन की शाश्वतता के रहस्य के रूप में महसूस करने में ही आनंद पाता हूं। मैं तो मौजूदा विश्व की विस्मयकारी संरचना के बोध, उसकी झलक मात्रा से संतुष्ट हूँ। साथ ही मैं संतोष पाता हूँ कि प्रकृति में प्रकट होने वाले महत् ज्ञान के एक अंश–भर को, चाहे वह कितना ही लघु क्यों न हो, समझ पाने के निष्ठावान प्रयास से भी।''

वस्तुतः सृष्टि की रहस्यमयता से आश्र्यचकित तथा विस्मित होकर सुदूर भूत या प्रचीन काल में ऋग्वेदी ऋषियों ने यह प्रश्न करने का साहस किया था कि–

''कुतः इयम विसृष्टिः ?
कथंम यदनास्था अनास्था बिभर्ति ?
कस्मिन गर्भे दधिरे मंद्राडयः ?''

कौन जानता है कि किसके गर्भ से ब्रह्माण्ड की उत्पति हुई ? अभैतिक व्योम में भैातिक लोक कैसे अपने आप को बनाए रखता है ? यह अंधकारमय शून्य में किस गहराई तक फैला हुआ है ? यदि जयशंकर प्रसाद जी की कामायनी में महाविप्लव के बाद मनु के विस्मय की अभिव्यक्ति को देखा जाय तो स्पष्ट होगा कि विश्व की रहस्यमयता से आश्चर्यान्वित होने की क्षमता मनुष्य में किस प्रकार की विह्वलता पैदा करती है–

''महानील इस परम व्योम में
अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युत्कण
किसका करते से संधान ?''
''हे अनन्त रमणीय कौन तुम ?
यह मैं कैसे कह सकता
कैसे हो, क्या हो, इसका तो

भार विचार न सह सकता।''स्टीफेन हौं किंग नामक ब्रिटिश गणितज्ञ द्वारा लिखी गई पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' बताया गया है कि भौतिकी के नियमों के आधर पर यह कहा जा सकता है कि बिगबैंग अथवा ब्रह्माण्डीय महाविस्ट से पहले ब्रह्माण्ड मटर के दाने के समान छोटे–छोटे टुकडों में था और कालहीन शून्य में था। उन्हों ने एक सिध्दांत का प्रतिपादन कर यह बताया कि काल या टायम कैसे शुरू हुआ । मटर के दानों का टुकडा समय या काल से होकर गुजरा और यह फैलाव शुरू हुआ। यह फैलाव बिगबैंग के तुरन्त पहले (एक सेकेंड के सूक्ष्म अंश के बराबर)

शुरू हुआ था। उनका कहना है कि ब्रह्माण्ड अनन्त काल तक फैलता रहेगा। यहां एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठा कि शुरू–शुरू में मटर के दाने के समान आकार एवं आकृति वाला ब्रह्माण्ड कैसे उत्पन्न हुआ ? इस प्रश्न के उतर में हौकिंग ने अपनी पुस्तक 'ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ टाइम' में बताया है कि यदि हम यह मानते है कि इसका सृष्टिकर्ता भी कोई न कोई तो अवश्य रहा होगा। परंन्तु यदि हम यह मानते है कि ब्रह्माण्ड अपने आप में संपूर्ण तथा अनन्त है अर्थात इसकी न तो कभी उत्पत्ति हुई और न कभी विनाश होगा। आद्यन्त रहित स्वयंभू की परिकल्पना या विश्वास तो भारतीय धर्म–दर्शन में प्रचलित व जनसामान्य में भी मान्य तथ्य है। इस संदर्भ में मैं डॉ. रमाकान्त पाण्डे जी को उद्वरित करना चाहूँगी जो भौतिकी और भारतीय दर्शन के साम्य को उभार सकेगी–

''महान अंतर्ज्ञान की क्षमता रखने वाले ज्ञानी महानुभावों द्वारा दिए गए उत्तरों की उपेक्षा करना वास्तव में सत्य का उपहास करना ही होगा। संश्लिष्ट गणित के स्थान पर ऋषियों ने दिव्य शक्तियों के जीते–जागते प्रतिकों की एक विधि अपनाई। जिस ब्रह्माण्ड को उन्होंने दर्शाया है वह तथ्यों का ऐसा शुष्क संसार नहीं है जैसा कि आधुनिक ब्रह्माण्ड विज्ञान सुझाता है। आज के वैज्ञानिक विकास को समझने के लिए इसे समझना आवश्यक है। आधुनिक भौतिक विधान संपूर्णता के प्रति सत्यनिष्ठ नहीं है जिसके कारण वह मस्तिष्क की स्थिर पवित्रता को अस्तव्यस्त कर देती है और जो भी तारतम्य वह दर्शाता है वह शीघ्र ही बेसूरा हो जाता है। वैदिक विज्ञान प्रकृति के प्रति अपने पराभौतिक दृष्टिकोण के कारण तथ्यों को सही क्रम में व्यक्त करता है और पदार्थ तथा उसके अनुकूल चेतना के बीच संपूर्ण तादात्म्य स्थापित करता है।''

ऋग्वेद के नसदीय सूक्त के अनुसार ब्रह्माण्ड के उद्‌भव के बारे में अनेक दृष्टियां है जिनमें वर्तमान ब्रह्माण्ड विज्ञान की दृष्टि से दो वाद महत्वपूर्ण हैं–1.व्योम वाद, 2.रजो वाद,। इन दोनों वादों को वर्तमान खगोलशास्त्र के दो सिद्धांतों के समांतर माना जा सकता है यथा–विस्फोट सिद्धांत तथा लगातार सृजन का सिद्धांत। रजोवाद के अनुसार रजस् आरंभिक तत्व है और यह प्राथमिक रजस् अपने मूल रुप या स्त्रोत में एक कैप्स्यूल या संपुटिका के रुप में है और यह लोकातीत, शाश्वत, अपरिवर्तनीय या स्तब्ध है। कोई अपरिभाषित शक्ति इस केंद्रक को आंदोलित करती है और भीषण विस्फोट होता है। विस्फोट के बाद तारकीय पिंड व्योम में दूर–दूर तक फैलने लगते हैं। यथा–

''लोकान् दिशाश्च वृनुते समंतात्।''

प्राथमिक रजस् सत् व असत् में विभाजित होता है। इनमें से एक चैतन्य के लिए और दूसरा जड भौतिक तत्वों का प्रतीक है। इन दोनों के बीच के तनाव से क्रमबद्ध डोलायमान गति आरंभ होती है जो अंतरिक्ष को निशीथ बिन्दु तथा मध्याहन बिन्दु के बीच गतिमान बनती है।

हौकिंग ने गणित के सहारे कहा कि सबसे पहले ब्रह्माण्ड मटर के दाने साथा और जब यह काल या समय से होकर गुजरा तो उसमें विस्फोट हुआ। श्रीमद्‌भागवत में विराट पुरुषविर्भाव तथा सृष्टिक्रम के वर्णन को यदि देखें तो हौकिंग का गणित व व्याख्या उपरोक्त वर्णन से काफी मिलती – जुलती लगती है, श्री नारायणीयम् में लिखा है–

''कालः कर्म गुणाश्य जीवनीवहा–विश्वम्च कार्यम विभो! चिल्लीला रति मेयुषि त्वयि तदा–निर्लीनता माययूः। तेशां नैव वदम्न्त्यसत्वमयि भोः शक्त्यात्मना तिष्ठताम् नो चेत् किं गगन प्रसून सदृशा – भूयो भवते संभवः।।

इसका अर्थ कुछ इस प्रकार है– 'हे विभू संसार में अब दिख रहे काल–कर्म–सत्व –रजसतमोगुण–जीव समूह–पंचभूत सहित लोक–ये सब चिद्‌विमलज्ञान रुप कीडा आनंद से पूर्ण एकमात्र तत्व, तुम्हारे में ही एकीकृत हो, एकत्व की स्थिति में थे। अर्थात् ये अपने बीज रुप में, शक्तिरुप में विद्यमान थे। यह सब थे इसका अर्थ यह नहीं कि ये सब थे ही नहीं, ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं। यदि ऐसा नहीं था तो ये सब कैसे व कहाँ से उत्पन्न हुए ?

विराट पुरुषार्विभाव में 8 से 10 श्लोक सृष्टि के जन्म की कथा कहती है। इनमें बताया गया है कि शब्द से आकाश, आकाश से स्पर्श ,स्पर्श से वायु, वायु से रुप, रुप से तेज, तेज से पृथ्वी की उत्पति हुई। इसके बाद प्रभु की क्रिया शक्ति से इन तत्वों के मेल से हिरण्मय अण्डे का निर्माण हुआ। प्रभु द्वारा बनाया गया यह अण्डा अनेक सालों तक जल या व्योम में था। इसको भेदकर ही विराट विधिम्–राजते अनेक प्रकार से प्रकाशित पुरुष, जगद्‌रुप पुरुष का

निर्माण हुआ। इस प्रकार प्रभु ही सहस्त्रों हाथ–पाँव, शीर्ष वाले अशेष जीव समष्टि रुप में भासमान हुए। क्या यही गणितज्ञ हौकिंग का मटर के दाने का हजारों तारिकाओं, अण्ड–पिण्ड, ग्रह–नक्षत्रों में विभाजित होना है ? हो भी सकता है। यह मात्र सूचना है। 'पुरुष सूक्तम' में भी प्रभु का वर्णन कुछ इसी प्रकार है और पहले ही श्लोक में कहा गया है–

''ओं सहस्त्रशीर्षा पुरुषः। सहस्त्राक्षः सहस्त्रापात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा। अत्यतिष्ठद्दशाङ्.गुलम्।।''

वह परम सत्ता संपूर्ण भासमान विश्व के आवरण के रुप में विद्यामान है जो हर शीर्ष का बोध है, हर आंख की दृष्टि है और हर अंग का कार्य है। उसका अस्तित्व ब्रह्माण्डातीत है।

'' एतावानस्य महिमा। अतो ज्याया पूरुषः।
पादोडस्य विश्वा भूतानि। त्रिवादस्यामृत द्रिवि।।''

भासमान संपूर्ण ब्रह्माण्ड उन्ही का भव्य विस्तार है, वह, परम सत्ता इसके परे हैं। उनकी भव्यता का एक भाग से ब्रह्माण्ड को अनन्त आधार प्रदान करते हैं जो भूत, वर्तमान व भविष्य में विस्तार पाता है परंतु उसकी भव्यता का अधिकांश भाग भासमान ब्रह्माण्ड की सीमा से परे है।

''तस्माद्विराडजायत। विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत। पश्चाद्–भूमिमथे पुरः।''

उसी से यह समस्त ब्रह्माण्ड अद्भूत है और इस ब्रह्माण्ड में वह विराजमान या सर्वव्यापी है। यही वह आधार बना जिससे आदि स्रष्टा अस्तित्व में आया। यह आदि पुरुष धीरे–धीरे बढ़ने लगा और उसने धरती तथा अन्य अण्ड–पिण्डादि को बनाया, दैवी व आसुरी दोनों प्रकार की।

वस्तुतः परम सत्ता, पराशक्ति, परमपुरुष आदि से संबंधित रहस्यवादी आत्मज्ञान की परंपरा उपनिषदों में मुखर हुई। इस परमतत्व की तत्वमीमांसीय विवेचन करते हुए डॉ. राधकृष्णन् ने सर्व प्रथम परमतत्व (the absolute) तथा ईश्वर में भेद किया है। मूल रुप में डॉ. राधकृष्णन् मानते हैं कि परमतत्व या ब्रह्म संपूर्ण सत्य है। वह निरपेक्ष परमतत्व विश्व से परे है। वह सब सत्ताओं, सब विशेषें का अधिष्ठान होते हुए भी स्वंय निर्विशेष है। जब हम परमतत्व को विश्व के अधिष्ठान के रुप में देखते हैं तो वह ईश्वर कहलाता है। जब परमतत्व की अनन्त संभावनाओं की एक संभावना का जगत् के रुप में वास्तवीकरण होता है, तब हम उसे ईश्वर कहते हैं''। आईन्स्टीन ने तो कहा था कि–'' मैं तो ईश्वर को जीवन की शाश्वतता के रहस्य के रुप में महसूस करने में ही आनंद पाता हूँ। मैं तो मौजूदा विश्व की विस्मयकारी संरचना के बोध, उसकी झलक मात्र से संतुष्ट हूँ । साथ ही मैं संतोष पाता हूँ कि प्रकृति में प्रकट होने वाले महत् ज्ञान के एक अंशभर को, चाहे वह कितना ही लघु क्यों न हो, समझ पाने के निष्ठावान प्रयास से भी।

रहस्य की भावना से प्ररित स्टीफेन हौकिंग ने ब्लैक होल्स या कृष्ण गह्वरों को दूसरे अंतरिक्ष में जाने वाले सुरंग कहा था। वस्तुतः ऋग्वेद के ऋषियों ने ब्रह्माण्ड या अंतरिक्ष से संबंधित प्रश्नों के उत्तर देते हुए कहा था कि सिर्फ बुद्धि या मानस विज्ञान की शक्ति से ही वे ब्रह्माण्ड के रहस्यों के बारे में जान सके हैं। पर जितना यह कहना आसान है उतना आसान यह है नहीं क्योंकि किसी व्यवस्था को जानने के लिए एस व्यवस्था से उपर उठना आवश्यक है और अपने मस्तिष्क को जानने के लिए बुद्धि के स्तर से उपर उठना जरुरी है। इसी संदर्भ में भारतीय प्रायद्वीप के चिन्तकों ने 'दर्शन' शब्द का निर्माण किया क्योंकि देखना मात्र अब्जर्व करना या प्रेक्षण करना नहीं है। अपने अनुभव की सच्चाई का परिक्षण भी किया। उनका दर्शन अंतिम या परम सत्य का दिव्य दर्शन है जैसे केक्यूले को बेन्जीन का अंतिम स्वरुप दर्ऱान स्वप्न में हुआ था। भारतीय समाज में प्रचलित उपासना पद्धतियों में आडत्बर एवं कर्मकाण्डों का लक्ष्य इसी ईश्वर को प्राप्त करना रहा है जिसका खण्डन कबीर जैसे निगुणियों सन्तों ने किया है। कबिर ने ईश्वर के सगुण रुप तथा उपासना पद्धतियों में निहित श्रेष्ठता के दम्भ पर प्रहार किया था क्योकि वह उस परमतत्व या द एब्सल्यूट को समझा गए थे। इस आधार पर निरक्षर, निगुरे कबिर भी खगोल शास्त्रीी थे क्योंकि उन्होंने ब्रह्माण्ड के भव्य विस्तार को अपनी उलटबांसियों में प्रकट किया था। उन्होंने कहा था कि सृष्टि के सृजन और लय का कारण परमात्मा है, जहाँ निरंजन बसते हैं, वहां कुछ है कि मात्र शून्य है, पहले गगन था कि पृथ्वी.....

''प्रथमे गगन कि पुहुमि प्रथमे प्रभू, प्रथमें पवन कि पांणी।
प्रथमे चंद कि सूर प्रथमे प्रभू, प्रथमे कौन बिनांणी।
प्रथमे प्रण कि व्यंड प्रथम प्रभू, प्रथमे रक्त कि रेत।
प्रथमे पुरिया कि नारी प्रथमे प्रभू, प्रथमे बीज की खेत।
प्रथमे दिवस कि रैणि प्रथमे, प्रथमे पाप कि पुण्यं।
कहे कबीर जहां बसहुं निरंजन, वहां कछु आहि कि सुन्यं।।''

भयमिश्रित उपरोक्त अनुभूति के प्राथमिक धरातल से कबीर का साक्षात्कार उस अत्यंत गंभीर बोध और अत्यंत दीप्तिमान सौन्दर्य से होता है जहाँ तक हमारे मानस की पहुच प्राथमिक रुप में ही हो पाती है– इसी ज्ञान और इसी भाव से ही सच्ची धर्म निष्ठा की रचना होती है–

''अलख लिनरंजन लखै न कोई, निरभै निराकार है सोई।
सुनि असथूल रुप नहीं रेखा, दृष्टि अदृष्टि छिप्यों नहीं पेखा।
बरन अबरन कथ्यौं नहीं जाई, सकल अतीत घट रह्यौ समाई।
आदि अंत ताहि नहीं मद्ये, कथ्यौ न जाई अहि अकथे।
अपरंपार उपजै नहीं विनसे, जुगति न जांनियै कथिये कैसे।।''

विश्व की विस्मयकारी संरचना के रहस्य को भेदने वालों को तथाकथित सभ्य–समाजइ ने हमेंशा संदेह की दृष्टि से ही देखा है। धर्म परक समाज ने कोपरनिकस की हत्या की तो विज्ञान के अंधानुयायियों ने अनेक दूसरी परंपराओं की हत्या की है। समकालीन चेतना किसी भी अंध–परंपरा से दूर ही रहना चाहती है, चाहे वह धर्म की हो या विज्ञान की। हौकिंग ने गणित की सीढ़ी के सहारे अंतरिक्ष के रहस्य को जानना चाहा है तो कबीर ने उलटबासियों के आधार पर। विधियाँ अलग हैं पर उपलब्धि तो एक है। हौकिंग का मटर का दाना और नारायणीयम का हिरण्यमयी अण्डा उसी अंतरिक्ष के जन्म की बात करता है जिसके बारे में हम जानना चाहते हैं। यदि किसी प्रकार को विचारधारा के श्रेष्टता के दम्भ में किसी उपलब्ध विषय को नकारा जाता है तो ज्ञान की एक धारा रुक जाती है। चिन्तन की इकाइयां बदल सकती है पर उपलब्धियां एक हो सकती है। इस धरातल पर अंतरिक्ष के परम तत्व से जुडने वाले स्टीफैन हौकिंग और कबीर की अंतिम उपलब्धियां उस महत् ज्ञान के एक अंशभर को समझ को समझ पाने का निष्ठावान प्रयास है और इस प्रयास के आधार पर कबीर की खेज किसी खगोल शास्त्री के खोज से कम नहीं है। प्रकट से अप्रकट की ओर बढ़ने वाले कबीर ने उसके अस्तित्व को जानना चाहा है जो ब्रह्माण्डातीत है और इस मानव समाज में व्याप्त श्रेष्ठाता के दम्भ की तुच्छता को उभारता है।

fVIi.kh

यह प्रपत्र सन् 2000 में आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत किया गया था। तिरुपति में स्थित श्री वेंकेटेश्वरा विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग द्वारा प्रो. शिवरामरेड्डी जी के निर्देशन में 'हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन तथा पारिभाषिक शटदावली की समस्याओं पर केन्द्रित था। इसी संगोष्ठी में गुणाकर मुले जी सें मुलाकात हुई जो मार्क्सवादी तथा हेतुवादी ही नहीं बज्कि बडे ही स्वाभिमानी एवं लेखन पर ही जीवन निर्वाह के लिए निर्भर यार किसी प्रकार की नौकरी करना उनके लिए गुलामी ही थी। वैज्ञानिक कथा लंखन उनकी विशेषता है। इस प्रपत्र को उन्हों ने खारिजकर दिया और किसी प्रकार की चर्चा में भी कोई रुचि नहीं दिखाईं। आज जब 'हिग्ग्ज बोसान' को 'गॉड पार्टिकल' या 'ईश्वरीयकण' कहा जा रहा है तब उपरोक्त विषय का महत्व बढ जाता हैं।

lnHk xzFk

1. 'शताब्दी के ढलते वर्षो में' – निर्मल वर्मा – राजकमल प्रकाशन, आगरा, प्र.सं.– 1979
2. 'भारतीय संस्कृति की देन' – निबन्ध, हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, खंड – 9, पृ. 200
3. 'ए ब्रीफ हिस्टरी ऑफ टाइम' – स्टीफन हॉकिंग।
4. कामायनी – जयशंकर प्रसाद
5. नरायणीय।
6. पुरुष सूक्तम।